शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir फरवरी २०१०, संस्करण- १

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'

मन को काबू में लाने के लिए सिर्फ दो ही उपाय मुख्य हैं- अभ्यास और वैराग्य।

प्रिय गुरुबन्धु,
सप्रेम जय गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेव की कृपा एवं प्रेरणा से प्रकाशित 'सिद्ध मार्ग' ई-पत्रिका का पहला संस्करण आप सबको सादर समर्पित है। महा कुम्भ के पावन पर्व पर इसका उदय हुआ है। आशा है। कि यह पत्रिका हमारे जीवन में अमृत का संचार कर हमें उस आनन्द के गन्तव्य तक पहुँचाने में माध्यम बनेगी जहाँ हमारे सिद्ध गुरु ले जाना चाहते हैं।

प्रस्तुत हैं गुरुदेव महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा २००१ दिल्ली में दिये गए प्रवचन के कुछ सम्पादित अंश।

बाबाजी के सत्सङ्ग होते-होते करीब ३०-३२ साल होते आ रहे हैं और हम अपने आप से प्रश्न कर सकते हैं कि इतने वर्ष बीतने पर हमारी आन्तरिक अवस्था क्या है? हम कहाँ थे, आज कहाँ हैं? इसके बारे में विचार करें और अपने आप ही पहचान लें कि किस स्तर तक हमारी प्राप्ति हुई है।

चञ्चलं हि मनः
कृष्ण प्रमाथि
बलवद् दृढम्'

मन चञ्चल है
और उसका बल
वायु जैसा है।

अभी कुछ दिन पहले हम बरेली में थे तो एक वृद्ध सज्जन मिलने आये और बोले कि २०-३० वर्ष की आयु से साधना कर रहे हैं, करीब ७५ की अभी अवस्था है। बोले- सब कुछ, कुछ अंश में प्राप्त है, परन्तु मन निर्विचार अभी तक नहीं हुआ और इस मन के निर्विचार न होने से मैं अपने आप से पूछता हूँ कि मेरी साधना में क्या कमी है। कई सहस्र गायत्री जप किये, अन्य जप किये, कई साधनाएँ की परन्तु मन की शान्ति हुई नहीं।

पिछले कुछ वर्ष से जब भी मैं दिल्ली आता हूँ तो एक माताजी प्रश्न करती हैं कि ज्ञान तो है कि सब आत्मा है और प्रायः मन में रहता भी है कि जो कुछ भी है आत्मस्वरूप है, परन्तु मन फिर भी भूल जाता है और सोचता है कि मैं देह हूँ और यह सब जितने हैं ये भी शरीर या मनुष्य हैं। जो भी उनका स्वरूप है उसी को देखते हैं और भूल जाते हैं कि सब चैतन्य परमात्मा है।

प्रश्न तो उनका ठीक ही है, क्योंकि गीता में भी अर्जुन भगवान से कहते हैं कि 'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्' यह मन चञ्चल है और उसका बल वायु जैसा है।

पुरानी नाव जिसमें बंबू और कपड़ा लगा होता है जिसे अंग्रेजी में 'सेल बोट' कहते हैं, उसमें इंजन-मोटर नहीं होता। न कोई चलाता है, वो हवा से ही चलती है। अर्जुन का कहना यह है कि यदि उस नाव को कोई नदी में छोड़ दे और कोई उसको दिशा देने वाला न हो, चलाने वाला न हो तो जहाँ उसे हवा ले जाती है, नाव वहीं जाती है। मन भी हमारा ऐसा ही है। महसूस होता है कि हम मन को चलाने वाले हैं, परन्तु मन उस नाव की तरह है। जहाँ उसकी इच्छाएँ, तृष्णाएँ उठती हैं, वहाँ वहाँ वो चला जाता है।

भगवान से अर्जुन पूछता है कि इस मन के लिए मैं क्या करूँ? भगवान सुनकर कहते हैं 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'। हे अर्जुन! इस मन को काबू में लाने के लिए सिर्फ दो ही उपाय मुख्य हैं- अभ्यास और वैराग्य। 'गुरुदर्शित मार्गेण मनः शुद्धिं तु कारयेत'- गुरु के बताये मार्ग का अनुसरण कर, जो

साधना हमें दी गयी है उसका अभ्यास कर, अपने मन को शुद्ध करें और वैराग्य से जीवन जिएँ।

प्रश्न यह उठता है कि संसार में रहते-रहते वैराग्य कैसे हो सकता है? प्राय: जितने भी फल होते हैं, उनके बीज अन्दर होते हैं। बीज का दर्शन फल को काटने से ही होता है। परन्तु एक फल ऐसा है, काजू का, जिसका बीज फल से बाहर है। फल से जुड़ा हुआ है, परन्तु फल से अलग भी है। भगवान नित्यानन्द का कहना यह था कि हम भी संसार में अपना जीवन ऐसे ही जिएँ; संसार के अन्दर घुस कर नहीं, संसार से अलिप्त होकर। शास्त्र कहते हैं कि यह सब मिथ्या है, अनित्य है।

गीता में भी भगवान कहते हैं - 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्' यह संसार अनित्य है क्योंकि यह परिवर्तनशील है। हम अपने ही जीवन का उदाहरण लें तो हम देखते हैं कि हमारा जीवन परिवर्तनशील और अनित्य है, इसमें कोई सुख नहीं है। इसलिए हे अर्जुन! भजन कर और भजन द्वारा सुख का अनुभव कर।

हे अर्जुन! भजन कर और भजन द्वारा सुख का अनुभव कर।

१९९६ में यहाँ दिल्ली में हमारे कैप्टन प्रताप साहब ने स्वागत में कहा था कि जब भी यहाँ सत्सङ्ग में आते हैं तो आनन्द का अनुभव करते हैं और जब विशेष सत्सङ्ग होता है तो ऐसा लगता है कि आनन्द की लहर चल रही है।

तुकाराम महाराज अपने अभंग में कहते हैं कि 'आनन्दाचे दोहे आनन्दाचे तरंग आनन्दाचे अंग आनन्दाचे'। वो अपना अनुभव बताते हैं कि भगवत-भजन करते करते उन्होंने अपने आप में ऐसी अवस्था पायी कि अन्तर में आनन्द की एक नदी बह रही है।

अगर कोई हमसे पूछे कि हमारे अन्तर में क्या बह रहा है तो हम कहेंगे-हमारे विचार। उनके अन्तर में क्या बह रहा है? वे कहते हैं 'आनन्दाचे दोहे....' आनन्द की ही एक नदी है जो मेरे अन्तर में बह रही है और उसमें तरंगे भी उठती हैं आनन्द की ही। 'आनन्दाचे अंग आनन्दाचे'- उस आनन्द का अंग भी, थोड़ा सा अंश भी, आनन्द ही है।

जीवन में कुछ अंशमें उस आनन्द की लहर, आनन्द की तरंग को अपने अन्तर में बहते हुए पाते हैं तो हम यह कह सकते हैं कि हमारी साधना ठीक मार्ग पर ठीक गति से चल रही है। नहीं, तो हमें विचार करना होगा।

हम भी ५, १०, २०, ३० साल बाद या जीवन भर की साधना के बाद अपने आप से पूछें, विचार करें कि क्या मेरा अंश तुकाराम महाराज जैसा है? है, तो बहुत बढ़िया! अगर पूर्ण रूप से भी उस अवस्था में नहीं हैं, परन्तु जीवन में कुछ अंश में उस आनन्द की लहर, आनन्द की तरंग को अपने अन्तर में बहते हुए पाते हैं तो हम यह कह सकते हैं कि हमारी साधना ठीक मार्ग पर ठीक गति से चल रही है। नहीं, तो हमें विचार करना होगा।

गीता के १७ वें अध्याय में भगवान ने तीन गुणों की चर्चा की है। इस संसार की सब वस्तुएँ उन ३ गुणों से बंधी हुई हैं और इन गुणों के आधार पर ही सब कुछ चलता है। इसके लिए भगवान अर्जुन से कहते हैं 'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' हे अर्जुन! सर्वप्रथम तू उन तीन गुणों से परे हो जा, क्योंकि चाहे सांसारिक जीवन हो, धार्मिक जीवन हो या आध्यात्मिक जीवन, यह सभी इन तीन गुणों के बंधन में रहते हैं, क्योंकि हम उन तीन गुणों के आधार पर चलते हैं।

जो कुछ भी कर्म हमारे से होता है वह इन तीन गुणों के आधार पर चलता है। इनमें सर्वप्रथम आता है सत्त्वगुण। कहते हैं कि जब सृष्टि हुई, सर्वप्रथम सत्त्वगुण आया। सत्त्वगुण- अच्छा गुण- सफेद रंग से दर्शाया जाता है, क्योंकि वह सफेद, स्वच्छ एवं शुभ्र माना जाता है। सत्त्वगुण के ऊपर चलने वाले को भगवान कहते हैं 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः'। सात्त्विक विचार, सात्त्विक आहार, सात्त्विक कर्म तथा जिनके जीवन का सब कुछ सात्त्विक है, शुद्ध है, वे धीरे-धीरे ऊपर की ओर चलते हैं।

प्रायः कोशिश तो हम सब की यही रहती है कि मैं ऊपर उठूँ, ऊपर बढ़ू,चाहे संसार में या अध्यात्म में। हमारा कर्म किस गुण से प्रेरित है, यह तो हमें विचार करके देखना पड़ेगा, अपने आप से पूछना पड़ेगा। यदि हमारा जीवन सात्त्विक हो तो हम ऊपर की ओर बढ़ेंगे ही।

दूसरा गुण है रजोगुण, जिसका रंग है लाल। उससे हमें कोई ठंडक महसूस नहीं होती। लाल देखने

सत्त्वगुण वाला न ज्यादा बोलता है न ज्यादा सुनता है, न कुछ ज्यादा करता है। अपने अन्तर-आत्मा की शान्ति में, आनन्द में ही मस्त रहता है।

से भड़कीला-जैसा कहें तो भी ठीक है। रजोगुण वाले का जीवन न पूर्ण रूप से सात्त्विक है, न पूर्ण रूप से तामस है। रजोगुण वाला कोशिश करता है कि आलस भी न हो और ज्यादा सच भी न बोले। अगर हम विचार करें तो कलियुग में रजोगुण वाले शायद ज्यादा मिलते होंगे। मन में विचार तो रहता है कि सत्य बोलना चाहिए, परन्तु सत्य बोलने से कार्य तो होने वाला नहीं, थोड़ा गोल-मोल करके बोले, तो इसके लिए उसको 'मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः' मध्यम गति अपनानी पड़ती है।

अगर हम विचार करें तो इन तीन गुणों की साधना में भी अवश्यकता है। सत्त्वगुण वाला न ज्यादा बोलता है न ज्यादा सुनता है, न कुछ ज्यादा करता है। अपने अन्तर-आत्मा की शान्ति में, आनन्द में ही मस्त रहता है, संसार से कुछ लेना-देना नहीं होता। रजोगुण वाला प्रयास करता है थोड़ा यहाँ से, थोड़ा वहाँ से, सब जगह से लेकर उसका मिश्रण करता है और उसका प्रयास रहता है कि मैं भी और आगे की तरफ बढ़ूँ।

साधना की दृष्टि से अगर हम सोचें तो कलियुग में मध्यम गति की साधना ज्यादा होती है, क्योंकि आज जैसे शुक्रवार है, शुक्रवार के अवसर पर हमने माता का भजन-कीर्तन किया और इस समय में हम देखते हैं कि बहुत लोग देवी की, माता की पूजा इत्यादि करते हैं और मैं भी मानता हूँ कि देवी की पूजा-आराधना से कुछ फल मिल जाता है। हमारे जीवन में कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं और उस माता के नाम में रात-भर का जागरण मशहूर हुआ है।

लोग सोचते हैं कि हम कुछ अच्छा कर्म करें, तो वे जागरण करवाते हैं। मैं तो एक या दो जागरण में कुछ मिनट के लिए ही गया हूँ और गलती मेरी यह हुई कि मैं कानों के लिए कपास लेकर नहीं गया, क्योंकि वे माइक में इतने जोर-जोर से चिल्लाते हैं कि बैठे हुए श्रोता लोगों को शान्ति, आनन्द का अनुभव होने के बजाय अन्दर से जो उनका राजसिक गुण है, वो उत्पन्न होता है। अगर हम अपने आप से पूछें कि अगले दिन सुबह या जब भी हम वहाँ से उठकर चले जाते हैं, क्या हमारी भावना में उस भगवती के प्रति वो श्रद्धा,

'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः'

सात्त्विक विचार, सात्त्विक आहार, सात्त्विक कर्म तथा जिनके जीवन का सब कुछ सात्त्विक है, शुद्ध है, वे धीरे-धीरे ऊपर की ओर चलते हैं।

अन्तर-आनन्द, जो होना चाहिए, वो हमारे हृदय में महसूस होता है क्या? प्रायः मैं मानूँगा कि यह सब कुछ नहीं। अगर आप 'हाँ' कहते हो तो बहुत अच्छी बात है, परन्तु मेरी दृष्टि में फिर आप जड़ हो। क्योंकि जब जिस तरह का महसूस होना चाहिए वह महसूस होने के लिए हमारा मन हमारी इन्द्रिय सूक्ष्म होनी चाहिए। जब हम सूक्ष्म दृष्टि से उसको जान-पहचान लेते हैं तभी हमें कुछ दृष्टि प्राप्त होती है।

इस तरह के भगवान के नाम में बहुत कुछ होता है, घटता है। जागरण एक ही ऐसी वस्तु नहीं, कई और भी हैं और यह सब ठीक है-मैं मानता हूँ कि तीनों गुणों के आधार पर चलने वाले अलग-अलग जिज्ञासु मनुष्य हैं। परन्तु साधना करने वालों का प्रयास यह हो कि हम 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः' ऊर्ध्व की ओर, मतलब ऊपर की ओर चलें। ऐसे सात्त्विक विचार, सात्त्विक जीवन, सात्त्विक हमारा कर्म हो कि हम धीरे-धीरे ऊपर उठें जैसे कि जब बोझ हल्का होता है तो कोई भी वस्तु उठती है। कर्मों द्वारा अगर हम अपने आप को हल्का करते हैं तो हम भी धीरे-धीरे उठ सकते हैं।

तो 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः अधो गच्छन्ति तामसाः' तीसरा आता है तम। तम गुण काला रंग-कृष्ण रंग से बताया जाता है। इन तीनों गुणों का मिश्रण हो कर ही सृष्टि बनती है- सत्त्व, रज और तम। तमोगुण नीचे की तरफ हमें ले जाता है। सत्त्व गुण से हम ऊपर उठते हैं। सत्त्व और तम का मिश्रण होने पर रजस होता है जो मध्य की ओर, न ऊपर न नीचे।

तमो गुण में रहने वाला मनुष्य नीचे की ओर जाता है। वाच, मन, काय इन तीनों से जब हमारा कर्म अन्धकार से ही भरा होता है, तब हमारा विचार ऐसा होता है जो कि हमेशा ही हमें संसार की लीला में फँसाता है। हमारी वाणी जैसी होती है, हमारे शरीर का कर्म भी वैसा ही होता है। तो फि र हम कभी उस परमात्मा के बारे में और ऊपर उठने के बारे में विचार करते नहीं।

धनी का लड़का धनी होता है, भले वो सोचे कि मैं धनी हूँ या नहीं।

ठीक उसी तरह से हम भी उस पूर्ण के अंश होने से, हमारी भ्रान्ति होने पर भी, पूर्ण ही हैं।

यह जो साधना हम कर रहे हैं उस भ्रान्ति को हटाने के लिए ही है।

अगर मनुष्य-शरीर में हम कहें कि पशु है, तो रजो गुण वाले पशु योनि के ही कहलायेंगे। शरीर हालांकि मनुष्य का है परन्तु उनका आचार, व्यवहार, विहार सब पशु के जैसा ही होता है। तमो गुण होता तो हम यहाँ सत्संग में उपस्थित होते नहीं, संसार के ही सुख में बाहर कहीं भटकते रहते। परन्तु हमारी अवस्था कुछ ऐसी हुई है कि हम अपने आप को कुछ सात्त्विक कह सकते हैं। परन्तु पूर्ण सात्त्विक जब हो जाता है तो मनुष्य के बाह्य कर्म कम होते जाते हैं, क्योंकि जब तक बाह्य संसार में बाह्य वृत्ति रहती है तब तक उसको तृप्ति नहीं होती।

साधना के विषय में मनुष्य यही सोचता है कि मैं रोज दो घंटे भजन करता हूँ, तो भगवान मुझे कितना देगा और हमारी अवस्था ऐसी है कि हम यह सोचते हैं कि मैं भगवान के लिए भजन, ध्यान साधना करता हूँ। सर्व प्रथम यह हमारा विचार ही गलत है, क्योंकि भगवान 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते' हम रोज गाते हैं कि वो पूर्ण है, पूर्णसे ही यह पूर्ण निकला है। पूर्ण से जो निकलता है वह पूर्ण ही है। अगर वह पूर्ण है तो उसको हमारे भजन, ध्यान, सतसंग से क्या लेना देना, वो तो अपने में ही मस्त है। जो साधना हम करते हैं, अपने लिए करते हैं।

आज जो हम अपने आप को अपूर्ण अवस्था में पाते हैं या अहम् के कारण हम सोचते हैं 'अपूर्णोऽहम् इत्येव मन्ये' कि मैं अपूर्ण हूँ, इस भ्रान्ति को मिटाने के लिए हम साधना करते हैं। हालांकि शास्त्र कहते हैं कि तुम पूर्ण हो क्योंकि तुम पूर्ण से आये हो। धनी का लड़का धनी होता है, भले वो सोचे कि मैं धनी हूँ या नहीं। ठीक उसी तरह से हम भी उस पूर्ण के अंश होने से, हमारी भ्रान्ति होने पर भी, पूर्ण ही हैं। यह जो साधना हम कर रहे हैं उस भ्रान्ति को हटाने के लिए ही है। हमारे भजन, ध्यान से परमात्मा को, सद्गुरु को कुछ असर या फर्क पड़ता नहीं। असर हमारे पर ही, अपने आप पर ही होता है।

धीरे-धीरे तमोगुण से हटकर रजोगुण की तरफ आते हुए, सत्त्वगुण की ओर आते हुए फिर अन्त में 'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' तीनों गुणों से परे होकर निर्गुण

'भावे हि विद्यते देवः'

परमात्मा है, भगवान है तो हमारी भावना में, हमारी श्रद्धा में है।

होकर हम उस पूर्ण में स्थिर हो जाते हैं, स्थित हो जाते हैं। जब हम उस पूर्ण अवस्था में स्थिर और स्थित हो जाते हैं तो फिर हमारा अनुभव भी तुकाराम महाराज जैसा 'आनन्दाचे दोहे, आनन्दाचे तरंग, आनन्दाचे अंग, आनन्दाचे' कि अन्तर में क्या है? बाहर क्या है? आनन्द है। क्योंकि अन्तर में जब आनन्द है तो बाहर भी आनन्द ही दिखता है। अन्तर में दु:खी है तो सब दु:खी दिखते हैं।

महाभारत में मशहूर कहानी है कि दुर्योधन से जब भगवान कृष्ण ने पूछा कि ये सब जो बैठे हैं वे कैसे लोग हैं? तो वह बोला- 'सब चोर हैं' क्योंकि जो खुद था वो सोचता था कि सब ऐसे ही होंगे। युधिष्ठिर से जब वही प्रश्न पूछा गया कि इस सभा में कौन हैं? तो बोले- 'सब बड़े से बड़े लोग हैं। धर्म का आचरण करने वाले लोग हैं' क्योंकि खुद धर्म का आचरण करने वाले होने से उनकी दृष्टि में सब वैसे ही लोग थे। सब वैसे थे कि नहीं थे, वह बात अलग है, परन्तु उनकी दृष्टि में सब वैसे ही थे।

सन्त की दृष्टि में भी सब उनके जैसे ही हैं, सब उस आनन्द में मस्त हैं, उसमें पूर्ण हैं। हम भी बहुत वर्ष से कहीं न कहीं सत्संग करते आये हैं और हालांकि साधना में उसका कुछ लेन-देन होता नहीं, लेन-देन होता है तो हमारे हृदय का, हमारे भाव का।

शास्त्र पुनः पुनः कहता है 'भावे हि विद्यते देवः' परमात्मा है, भगवान है तो हमारी भावना में, हमारी श्रद्धा में। तो हम धीरे-धीरे अपने हृदय को ऐसा बनायें, ऐसी उसकी तैयारी करें कि उसके अन्दर स्थित जो भगवान है, जो परमात्मा है, उसका दर्शन हमें सदैव होता रहे।

यहाँ लिखा है कि 'आप किसी का पाप न देखो, इससे पुण्य क्षीण होता है'। पुण्य क्षीण होता है उसकी तो बात अलग है परन्तु उसमें कहने का तात्पर्य यह है कि हम अपनी दृष्टि को बदल दें कि आज जो हम खराब देखते हैं, उसको बदल कर 'सब ठीक है, जो कुछ भी है, अच्छा है' देखें।

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु

भेदों बीच अभेद बताया, आवागमन विमुक्त कराया,
धन्य हुए हम पाकर धारा ब्रह्मज्ञान निर्झर की।
आरती करूँ गुरुवर की॥

YOU HAVE REVEALED THE ONENESS AMIDST THE DIVERSITY
AND DELIVERED US FROM TRANSMIGRATION.
HOW FORTUNATE WE ARE TO HAVE RECEIVED THE CLEAR STREAM
OF KNOWLEDGE OF THE DIVINE.
LET US DO ĀRATĪ FOR THE BEST OF GURUS.

SHANTI MANDIR
Temple of Peace